R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-17, अङ्क-12 दिसम्बर 2018 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख-समाचार पत्र

मङ्गलायतन

तीर्थधाम मङ्गलायतन में
आयोजित दीपावली शिविर की झलकियाँ

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-18, अङ्क-12 (वी.नि.सं. 2544) दिसम्बर 2018

धनि मुनि जिनकी लगी

धनि मुनि जिनकी लगी लौ शिवओरनै ॥टेक॥
सम्यगदर्शनज्ञानचरननिधि,
धरत हरत भ्रमचोरनै ॥धनि० ॥
यथाजात मुद्राजुत सुन्दर,
सदन विजन गिरिकोरनै ।
तृन कंचन अरि स्वजन गिनत सम,
निंदन और निहोरनै ॥धनि० ॥
भवसुख चाह सकल तजि बलसजि,
करत द्विविध तपघोरनै ।
परमविरागभाव पवितैं नित,
चूरत करम कठोरनै ॥धनि० ॥
छीन शरीर न हीन चिदानन,
मोहत मोहझकोरनै ।
जग-तप-हर भविकुमुद,
निशाकर मोदन 'दौल' चकोरनै ॥धनि० ॥

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़
पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलियां

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
श्रीमती जिनेन्द्रमाला
धर्मपत्नी स्व. श्री हेमचन्द जैन
हस्ते श्रीमती पूनम देवेन्द्र जैन
सहारनपुर (उ.प्र.)

क्या - कहाँ

वीतराग संत अपूर्व 5
जिसकी प्रतीति होते ही 7
चैतन्यराजा की सेवा करो ! 12
समाधिमरण के अवसर पर 15
आचार्यदेव परिचय शृंखला 22
श्री वज्रसूरि 22
श्री यशोभद्र 23
श्री जोईन्दु..... 24
संसार की स्थिति और..... 26
उपदेश सिद्धांत रत्नमाला 32
समाचार-दर्शन 32

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

वीतराग संत अपूर्व भेदज्ञान कराते हैं, वह भेदज्ञान करके आत्मा आनंदित होता है

[समयसार गाथा 22 से 25 पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन]

जीव का स्वरूप पुद्गल से भिन्न चेतनारूप है; ऐसा स्वरूप बतलाकर आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! तू तो चैतन्यस्वरूप है, तू कहीं पुद्गलस्वरूप नहीं है। अंतर में विचार करके देख तो तुझे अपनी चेतनता का और जड़-पुद्गल से अत्यंत भिन्नता का अनुभव होगा।

अरे, कहाँ तू चैतन्य भगवान और कहाँ वे अचेतन-जड़? दोनों को सर्वथा भिन्नता है। सर्वज्ञ भगवान ने चेतनमय जीव देखा है, पुद्गल तो जड़रूप है। चेतनतत्त्व पुद्गलरूप कैसे होगा? राग भी चेतनता रहित है। चेतन तत्त्व कभी चेतनता छोड़कर रागमय या शरीरमय नहीं होता और शरीर या राग कभी चेतनरूप नहीं होते; दोनों में बिल्कुल भिन्नता है। जिस प्रकार प्रवाहीपन और खारापन तो पानी में एकसाथ रह सकते हैं, उसमें विरोध नहीं है; उसी प्रकार कहीं जीव में चेतनता और अचेतनता को अविरोधपना नहीं है; जीव में जिस प्रकार चेतनपना तन्मयरूप से सदा विद्यमान है, उसी प्रकार कहीं रागादिपना जीव के साथ तन्मय नहीं वर्तता, वह तो भिन्न वर्तता है। सर्वज्ञदेव का कहा हुआ ऐसा भेदज्ञान करके हे जीव! तू प्रसन्न हो... आनंदित हो!

अहा, मेरा चैतन्यतत्त्व तो इतना सरस, रागरहित शोभायमान है, वह मेरे गुरु के प्रताप से मुझे अनुभव में आया। इस प्रकार स्वतत्त्व को देखकर हे जीव! तू आनंदित हो! जहाँ आनंदमय तत्त्व स्वयं अपने अनुभव में आया, वहाँ अब संदेह कैसा? खेद कैसा? संदेह और खेद छोड़कर ऐसे स्वतत्त्व को आनंदसहित अनुभव में ले। अनादि काल से भूलकर भव में भटका, तथापि मेरा तत्त्व बिगड़ नहीं गया है, चेतनता को छोड़कर जड़रूप-रागरूप नहीं हुआ है; चारों ओर से, सर्व परभावों से मेरा तत्त्व पृथक् का पृथक्

चैतन्यमय है।—ऐसा अंतर में देखते ही अपने को परम अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है। ऐसा स्वाद लेकर हे जीव! तू प्रसन्न हो... उज्ज्वल हो... और ऐसे उपयोगस्वरूप आत्मा को अनुभव में ले।

अहा! सर्व प्रकार से तू प्रसन्न हो... किसी प्रकार दु:खी न हो! अरे, चैतन्य में कहीं दु:ख होगा? संतुष्ट होकर तू आनंदमय चैतन्यतत्त्व को देख! वर्तमान में भी तू ज्यों का त्यों है। अंतर में देखते ही तुझे महा आनंद होगा। ऐसे तत्त्व को देखकर धर्मी कहता है कि अब परभाव में मैं नहीं जाऊँगा... नहीं जाऊँगा। चेतनरूप ही मैं हूँ—ऐसी श्रद्धा के सिंहनाद से धर्मी कहता है कि अब हमारे भव कैसे और दु:ख कैसा? जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में अंधकार नहीं है, उसी प्रकार मेरे चैतन्यसूर्य के प्रकाश में रागादि परभावों का अंधेरा नहीं है; नहीं है; नहीं है।

अहा! चैतन्य की ऐसी बात सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होगा! ऐसे अपने चैतन्य को लक्ष्य में लेकर तू प्रसन्न हो जा! जहाँ आत्मा का लक्ष्य हुआ, वहाँ धर्मी परम आनंद के वेदन सहित नि:शंक हो जाता है कि बस, सर्वज्ञदेव द्वारा देखे गये आत्मा का अनुभव हमने भी कर लिया है... जैसा सर्वज्ञ भगवान ने देखा है, वैसे ही अपने चैतन्यस्वरूप आत्मा का हम अनुभव कर रहे हैं।

अहा! प्रमोद सहित एकाग्रतापूर्वक अपने चैतन्य की बात तू सुन तो सही! आत्मा का ऐसा सरसस्वरूप सुनकर अंतर में असंख्य प्रदेश प्रमोद से उल्लसित हो जाते हैं। मुमुक्षु जीव अपने तत्त्व को देखकर महा प्रसन्न होता है। अपनी वस्तु अति गंभीर एवं अत्यंत महान है, परंतु वह ऐसी नहीं है कि उसमें ज्ञान द्वारा प्रविष्ट न हुआ जा सके! ज्ञान की उज्ज्वलता द्वारा अंतर में ऐसे चैतन्यतत्त्व का अनुभव किया जा सकता है। आत्मा अपने चैतन्यलक्षण को कभी बदलता नहीं है। लाख प्रतिकूलताओं के बीच भी ज्ञानी अपने चैतन्यलक्षण को नहीं छोड़ते अथवा चैतन्यलक्षणरूप जो स्वतत्त्व है, उसका कभी लक्ष्य नहीं छोड़ते। अहा, ऐसे चैतन्यलक्षणवान स्वतत्त्व को तू आनंद से अनुभव में ले।

शेष पृष्ठ 27 पर...

जिसकी प्रतीति होते ही आनंद का सागर उल्लसित हो —ऐसे स्वतत्त्व की महिमा लाकर श्रवण करो!

इस समयसार में शरीर से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्व बतलाया है। जीव ने अपना यथार्थ स्वरूप अनंत काल से नहीं जाना था, इसलिए उस एकत्वस्वरूप की दुर्लभता है। जगत में यह जीव सर्व वस्तुएँ प्राप्त कर चुका परंतु अपने चैतन्यतत्त्व का स्वयं कभी अनुभव नहीं किया, इसलिए वह दुर्लभ है। दुर्लभ है—यह सच है, तथापि उसे न जाना जा सके, ऐसा नहीं है। उसे जाना जा सकता है और उसकी पहिचान करने से वह सुलभ होता है। ज्ञानियों को आत्मा सुलभ है; अज्ञानियों को जगत के विषय सुलभ लगते हैं और अतीन्द्रिय आत्मा दुर्लभ लगता है। ऐसे एकत्वस्वरूप को जो जानना चाहता है, उसे उसका स्वरूप इस समयसार में आचार्यदेव ने बतलाया है।

आत्मा का शुद्ध स्वरूप दुर्लभ है—ऐसा कहा, उसका यह अर्थ नहीं है कि वह प्राप्त नहीं हो सकता; परंतु दुर्लभ है, इसलिए तू अपूर्व भाव से उसकी प्राप्ति का पुरुषार्थ करना। दुर्लभ वस्तु का अचिंत्य मूल्य समझकर उसकी प्राप्ति का पुरुषार्थ करने से वह सुलभ हो जाएगी। पूर्व काल में तूने सच्चे भाव से आत्मा का स्वरूप नहीं सुना है; सुना तब रुचि नहीं की; इसलिए अब ज्ञानी के निकट ऐसे अपूर्वभाव से सुनना कि तुझे अपनी वस्तु सुलभ हो जाए। अरे, अपनी वस्तु कहीं अपने को दुर्लभ होती है ? दुर्लभता, वह व्यवहार है, और सुलभता, वह निश्चय है।

पूर्व काल में अनंत बार आत्मा की बात तो सुनी है, तथापि नहीं सुनी; ऐसा क्यों कहते हो ? तो कहते हैं कि चैतन्यवस्तु जैसी महान है, वैसी लक्ष्य में नहीं ली; उसका प्रेम नहीं किया; इसलिए श्रवण का फल उसे नहीं आया; इसलिए उसने आत्मा की बात सुनी ही नहीं है। वास्तव में सुना उसे कहा जाता है कि जैसी चैतन्यवस्तु है, वैसी अनुभव में आ जाए।

उसी प्रकार निगोद में अनंत जीव ऐसे हैं कि जिन्हें अभी तक कर्णेन्द्रिय ही प्राप्त नहीं हुई है, तथापि यहाँ कहते हैं कि उनने भी अनंत बार काम-भोग-

बंध की ही कथा सुनी है। नहीं सुनी; फिर भी सुनी क्यों कहते हो ? क्योंकि उस विकथा के श्रवण का फल जो राग का अनुभव, वह उनके वर्तता है। शब्द भले ही नहीं सुने, परंतु सुने बिना अकेले शुभाशुभराग के अनुभवरूपी संसार की चक्की में वे पिस रहे हैं, इसलिए वे पुण्य-पाप की विकथा ही सुन रहे हैं, ऐसा कहा है। उपादान में जैसा वेदन है, वैसा ही श्रवण कहा है। जो चैतन्य के एकत्व का अनुभव नहीं करता, उसने चैतन्य की बात सुनी ही नहीं है; जो राग का एकत्वरूप से अनुभव करता है, वह राग की कथा ही सुन रहा है। भले ही भगवान के समवसरण में बैठा हो! भावश्रवण उसे कहा जाता है कि जैसा श्रवण किया, वैसे तत्त्व को अनुभव में ले। भाई, तेरे अनुभव में आ सके, ऐसा तेरा तत्त्व है और उसी तत्त्व का स्वयं अनुभव करके बतला रहे हैं। अरे, तू स्वयं चैतन्यनाथ सुख का भंडार! और अपने सुख की भीख तू किसी दूसरे के पास माँगे, यह तुझे शोभा देता है ? अनंत काल से तूने जिसका श्रवण नहीं किया, अनुभव नहीं किया, ऐसा अचिंत्य तत्त्व ज्ञानी संत तुझे वर्तमान में सुना रहे हैं; उसे सुनकर, समझकर उसकी परम महिमा लाकर अनुभव करने का यह अवसर आया है।—ऐसा अवसर तू चूकना नहीं।

अरे, आत्मा का ऐसा स्वरूप सुनने के लिए भी जिसे निवृत्ति न मिले, उसकी जिज्ञासा भी जागृत न हो, उसे तो आत्मा का मूल्य ही कहाँ है। इन्द्र स्वर्ग को भी तुच्छ समझकर जिस तत्त्व का श्रवण करने इस मनुष्य-लोक में आते हैं, उस चैतन्यतत्त्व की महिमा का क्या कहना! अरे, ऐसे चैतन्यतत्त्व के अनुभव से रहित अकेले शुभाशुभभाव, वह तो भार है। जिस प्रकार बैल भार को खींचते हैं; उसी प्रकार अज्ञानी शुभाशुभ कषायचक्र में वर्तता हुआ दु:ख के भार को खींचता है; चैतन्य के अतीन्द्रिय सुख को भूलकर इन्द्रिय-विषयों की तृष्णा से आकुल-व्याकुल होता है। उससे छूटने के लिए आत्मा का पर से भिन्न एकत्वस्वरूप यहाँ समझाया है; ऐसा स्वरूप समझे तो कषाय के भार से छूटकर जीव हलका हो जाये और उसे अपने एकत्व चिदानंदस्वरूप के अनुभव से परम आनंद का स्वाद आये।

आत्मा के स्वभाव को पर से भिन्न जाने तो अंतर का चैतन्य-पाताल फूटकर शांति-आनंद प्रगट हो। जिसे ऐसे आत्मा की खबर नहीं है और परविषय में सुख मानता है, उसे तो मोहरूपी बड़ा भूत लगा है और इसलिए उसे विषयों की तृष्णा फूट निकली है। भीतर चैतन्य को स्वविषय बनाकर उसमें झुकने से आनंद का समुद्र उमड़ता है और पर में सुख मानकर परविषयों की ओर झुकने से तृष्णा की खाई निकलती है।

अरे जीव! जिसे जानते ही आनंद का सागर उल्लसित होता है, ऐसे अपने स्वतत्त्व की महिमा तू सुन तो सही! अनंत काल से समझे बिना आत्मा का अहित किया है, तो अब इस भव में तो मुझे आत्मा का हित कर लेना है। अनंत भवों से बिगड़ी हुई बाजी अब इस भव में सत्समागम से सुधार लेना है। इस प्रकार अंतर में आत्महित की अभिलाषा जागृत होना चाहिए। ऐसे सत्संग का योग पाकर मुमुक्षु को भव बिगड़ने की चिंता नहीं होती, अब तो भव का अंत करने की बात है। ऐसा अपूर्व धर्म प्राप्त हुआ तो अब मेरे भव का अंत आ गया, इस प्रकार धर्मी के अंतर से भव के अंत की ध्वनि उठती है। अरे, वर्तमान में तो मुझे अनंत भव के दु:खों से छूटकर मोक्षसुख साधने का अवसर मिला है। अब इन संसार के दु:खों से बस होओ!... बस होओ! यह तो आत्मस्वभाव के परम सुख का स्वाद लेने का अवसर है! अहा, मेरा चैतन्यतत्त्व जो मेरे अंतर में स्पष्टरूप से सदा प्रकाशमान है—ऐसे निर्दोष चैतन्यतत्त्व पर इस परभावरूपी कषायचक्र का लेप शोभा नहीं देता। शास्त्र में (नयचक्र में) कहा है कि व्यवहार तो निश्चय के ऊपर का लेप है। जिस प्रकार लेप से मूलवस्तु ढँक जाती है, उसी प्रकार आत्मा का जो निश्चय शुद्धस्वरूप है, वह परभावरूपी व्यवहार के लेप द्वारा ढँक जाता है; अज्ञानी को रागादि व्यवहारभाववाला ही आत्मा दिखाई देता है—शुद्ध आत्मा उसे दिखाई नहीं देता—अनुभव में नहीं आता। स्वयं को उसका अनुभव नहीं है और अनुभवी ज्ञानियों से सुनने का अवसर मिला, तब उसकी प्रीति भी नहीं करता।

अरे, मेरा यह चैतन्यतत्त्व एकत्वस्वभाव में शोभायमान होता है, उस पर

कषायचक्र का लेप कैसा ? शुभाशुभभावरूपी कषायचक्र के साथ चैतन्य का संबंध कैसा ? चैतन्य के शांत-निराकुल स्वभाव की कषायों के साथ एकता नहीं है, भिन्नता ही है। ऐसी भिन्नता ज्ञानी बतलाते हैं। उसे सुनकर, उसका प्रेम करके, बारंबार उसका परिचय करके वह अनुभव में लेने जैसा है; यही कल्याण की रीति है। भाई, ऐसे तत्त्व का प्रेम करेगा तो तेरी बिगड़ी हुई बाजी सुधर जाएगी, तेरा भव सुधर जायेगा और आत्मा का परमसुख तुझे अपने में दिखाई देगा। ऐसा भेदज्ञान तुझसे हो सकता है, वही ज्ञानी तुझे समझाते हैं। आत्मा स्वयं अपने को प्रत्यक्ष दिखाई दे ऐसा है। अंतरंग प्रीति से अभ्यास करने पर दुर्लभ तत्त्व भी सुलभ हो जाता है। बाह्य विषयों की मिठास थी, तब राग से भिन्न चैतन्यतत्त्व दुर्लभ था, अब राग से भिन्न चैतन्य के अभ्यासरूप भेदज्ञान द्वारा आनंदमय आत्मतत्त्व सुलभ हुआ है; ज्ञानी को वह स्वानुभवगम्य हुआ है, इसलिए वह सुलभ है। ज्ञानी के निकट श्रवण करके अंतर में प्रयोग करने से 'प्राप्त की प्राप्ति' होती है; स्वभाव में था, वह पर्याय में प्रगट होता है। पूर्व अज्ञानदशा में दुर्लभ था, परंतु अब 'समयसार' के श्रवण से हमारा एकत्व हमें सुलभ हो गया, यह आत्मज्ञ संतों का प्रताप है। अपने एकत्वस्वभाव की ऐसी प्रतीति की, वही आत्मज्ञ संतों की सच्ची उपासना है।

आत्मा का शुद्धस्वरूप पहले कभी जाना नहीं है—अनुभव नहीं किया है—प्रेम से सुना भी नहीं है; उस शुद्धस्वरूप को जानने की अब जिसे रुचि जागृत हुई है, ऐसे शिष्य को यहाँ समयसार में आत्मा के समस्त निजवैभव से आचार्यदेव शुद्धात्मा बतलाते हैं। जिसे शुद्धात्मा की रुचि—उत्कंठा हुई है, ऐसे शिष्य को समझाते हैं।

कैसा है आत्मा का शुद्धस्वभाव ? वह चैतन्यभावरूप सदा प्रकाशमान ज्ञायकभाव, शुभाशुभ कषायचक्ररूप परिणमित नहीं होता। चैतन्यभाव कभी रागरूप नहीं हुआ है; ऐसे आत्मा का अनुभव करने से शुद्धात्मा का स्वाद आता है। ऐसे आत्मा को जाने बिना इस संसार के फेरे नहीं मिटते। भाई! इन संसार दुःखों में अवतार लेना, वह कलंक की बात है। आनंदस्वरूप आत्मा

को यह संसार के दु:ख शोभा नहीं देते। इनसे छूटना चाहता हो तो अपने ऐसे शुद्धस्वरूप को जान।

अपने ज्ञान को अंतरोन्मुख करने से तुझे अपना संपूर्ण आत्मा प्रत्यक्ष होगा, महा आनंदसहित तेरा आत्मा तुझे प्राप्त होगा अर्थात् अनुभव में आयेगा। ऐसा अंतर्मुखज्ञान सीधा आत्मा को स्पर्श करता है, उस ज्ञान में इन्द्रियों की-मन की-राग की अपेक्षा नहीं रहती; सबसे पृथक् हुआ ज्ञान आत्मा के स्वभाव में तन्मय वर्तता है। ऐसे ज्ञान में अतीन्द्रिय सुख का स्वाद आता है। मैं तो शरीररहित, रागरहित, शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यघन हूँ; अपने स्वरूप को जानने के लिए मैं ही स्वयंज्योति—प्रकाशमान हूँ, किसी अन्य की सहायता उसमें नहीं है। स्वयं प्रकाशमानरूप से अपना स्वरूप मुझे प्रत्यक्ष है।—ऐसा जो जानता है—अनुभवता है, वह जीव धर्मी है।

चैतन्यतत्त्व जितना महान है, उतना जिसके लक्ष्य में आये, उसी के विकल्प टूटेंगे अर्थात् विकल्प और ज्ञान की भिन्नता होकर उसके अतीन्द्रिय ज्ञानप्रकाश की किरणें फूटेंगी और आनंद का सुप्रभात हो जाएगा। वस्तु जैसी और जितनी है, उसकी अचिंत्य महिमा लक्षगत हुए बिना सच्चा ध्यान नहीं होता और विकल्प नहीं छूटते। ज्ञानतत्त्व स्वयं विकल्परहित है, उस तत्त्व का अनुभव करते ही विकल्प रहित चैतन्य का वेदन होता है, उसकी श्रद्धा होती है, उसका ज्ञान होता है, उसका आनंद होता है; इस प्रकार अनंत गुणों का निर्दोष कार्य आत्मा में एकसाथ प्रगट होता है—उसका नाम धर्मदशा है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-11-12 (अप्रेल-1972), वर्ष-27]

...पृष्ठ 6 का शेष

इस प्रकार श्रीगुरु ने अत्यंत करुणा से भेदज्ञान कराया, तदनुसार ज्ञान की उज्ज्वलता करके शिष्य परम प्रसन्न हुआ है, आनंदित हुआ है। चैतन्य तत्त्व ही ऐसा है कि जिसे लक्ष्य में लेकर अनुभव करने से महा आनंद होता है।

धन्य है गुरु को! जिन्होंने परम अनुग्रह से भेदज्ञान कराके शिष्य को स्वतत्त्व में सावधान करके आनंदित किया है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-11-12 (अप्रेल-1972), वर्ष-27]

चैतन्यराजा की सेवा करो!

तुम स्वयं चैतन्यराजा हो, चैतन्यराजा राग की सेवा करे, वह उसे शोभा नहीं देता।

[श्री समयसार, गाथा 17-18 पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन]

वीतरागदेव के मार्ग में ऐसा उपदेश है कि हे मोक्षार्थी जीवो! यदि तुम्हें जन्म-मरण के दु:ख से मुक्त होना हो और आत्मा के परमसुख का अनुभव करना हो तो जगत में महान ऐसा तुम्हारा चैतन्यतत्त्व है—वह ज्ञान की अनुभूति-स्वरूप है—उसे लक्ष्य में लेकर ज्ञान-श्रद्धा-एकाग्रता द्वारा उसकी सेवा करो। अर्थात् तुम्हारा आत्मा चैतन्य राजा है, उसकी सेवा करो। उसकी सेवा कैसे होती है? राग से भिन्न ऐसी जो चैतन्य-अनुभूति है, उस अनुभूतिस्वरूप मैं हूँ—ऐसा जानना, नि:शंक श्रद्धा करना तथा उसमें स्थित होना ही आत्मा की सेवा है और उसके सेवन से मोक्ष होता है। अन्य किसी भी प्रकार मोक्ष नहीं होता।

भाई, ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा की सेवा बिना-उसे जाने बिना तू संसार में अनादि काल से दु:खी हुआ है। आत्मा ज्ञानस्वरूप तो है ही, लेकिन 'मैं ज्ञानस्वरूप हूँ'—ऐसी अनुभूति जब तक न करे, तब तक ज्ञान का स्वाद नहीं आता अर्थात् ज्ञान की सेवा नहीं होती। अरे, जो ज्ञान की सेवा करते हैं, उनकी दशा तो राग से भिन्न हो जाती है और अलौकिक आनंद के वेदनसहित उनहें मोक्षमार्ग प्रगट होता है।

देखो, आत्मा की सेवा की रीति बतलाने के लिए उदाहरण भी 'राजा' का दिया है। राजा अर्थात् श्रेष्ठ! मोक्षार्थी के लिए यह चैतन्यस्वरूप ज्ञायक राजा ही सर्वश्रेष्ठ है, वही सेवा तथा आराधना करने योग्य है। आत्म-राजा तो चैतन्यभाव में तन्मय है, वह कहीं रागादि में तन्मय नहीं है, इसलिए आत्मा की सेवा करनेवाला कभी राग की सेवा नहीं करता; राग से पृथक् होकर ज्ञान में तन्मय होकर जो ज्ञानभावरूप परिणमित हुआ, उसी ने चैतन्य राजा की सेवा की है तथा ज्ञान का सेवन किया है।

जिनभगवान ने ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा में स्थिर रहने का उपदेश दिया

है। ज्ञान में निवास करना ही सच्चा गृह-निवास है। रागरूपी परघर में अनादि काल से तू निवास कर रहा है, इसलिए राग से पृथक् होकर तूने ज्ञान का एक क्षणमात्र भी सेवन नहीं किया, यदि एक क्षण भी राग से पृथक् होकर ज्ञान का सेवन करे तो मोक्ष का मार्ग खुल जाए। इसलिए हे मोक्षार्थी जीवो! तुम स्वसन्मुख होकर ज्ञान द्वारा इस चैतन्य राजा की सेवा करो, उसे जानकर उसकी श्रद्धा करो और उसी में विश्राम करो।

अरे, जो राग का सेवन करे, उसे मोक्षार्थी कैसे कहा जाए? जो राग का अर्थी है, वह मोक्ष का अर्थी नहीं है; जो मोक्ष का अर्थी है, वह राग का अर्थी नहीं है। ज्ञान-आनंद का धाम आत्मा स्वयं है, तथापि जहाँ तक वह स्वयं अपने को ज्ञानरूप अनुभव नहीं करता, वहाँ तक ज्ञान की सेवा नहीं होती, और ज्ञान की सेवा के बिना मोक्ष की सिद्धि नहीं होती। इसलिए जैनधर्म में भगवान ने मोक्षार्थी जीवों को ज्ञान की सेवा करने का उपदेश दिया है।

यद्यपि आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है ही, तथापि अज्ञानी जन ज्ञान का एक क्षण भी अनुभव नहीं करते और राग की ही सेवा किया करते हैं। मैं ज्ञानस्वरूप हूँ—ऐसी स्वयं पहिचान करे—अनुभव करे तो राग से भिन्न ज्ञानदशारूप परिणमित हो और तभी ज्ञान की सेवा की, ऐसा कहा जाए। 'मैं ज्ञान हूँ'—ऐसी श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव द्वारा आत्मराजा की सेवा करने से आत्मा अवश्य ही सिद्धि को प्राप्त होता है और ऐसे आत्मराजा की सेवा बिना अन्य किसी उपाय द्वारा आत्मा सिद्धि को प्राप्त नहीं होता।

हे भाई! जिसमें अनंत गुणों का निवास है, ऐसी चैतन्य वस्तु तू स्वयं है। अरे चैतन्य राजा! तूने अपने अचिंत्य वैभव को कभी पहचाना नहीं। अपने स्वगृह में कभी प्रवेश नहीं किया, स्वगृह को भूलकर राग को अपना घर मानकर उसी में तूने निवास किया है; परंतु अब श्रीगुरु तुझे स्वगृह में प्रवेश कराते हैं कि हे जीव! तू अपने आत्मा को चैतन्यस्वरूप जानकर उसकी सेवा कर, जिससे तेरा कल्याण होगा।

श्रीगुरु ने जैसा कहा, वैसा शिष्य ने किया, तब उसने अपने गृह में प्रवेश

किया है। अरे, अपने गृह में प्रवेश करने का किसे उत्साह न होगा? गाय-बैल जैसे पशु भी जब खेतों में काम करके वापिस अपने घर की ओर लौटते हैं तो उमंग से दौड़ते-दौड़ते आते हैं। बैल जब खेत में काम करने को जाता है, तब वह धीरे-धीरे जाता है लेकिन जब खेत से काम करके वापिस घर पूरी रात आराम करने और घास चरने को आता है तो वह दौड़ता-दौड़ता आता है। अरे! बैल जैसे पशु को भी छुटकारे का कैसा उत्साह आता है, तो हे जीव! तुझे वीतरागी संत छुटकारे का मार्ग बतलाते हैं; अनादि काल से जीव संसार में परिभ्रमण करते हुए थक गया है, उसे श्रीगुरु शांति का धाम ऐसा स्वगृह बतलाते हैं, जिस स्वगृह में रहकर सादि-अनंत काल आनंद का अनुभव करता है, उस स्वगृह में आने की किसे उमंग न होगी? तू अपने आत्मा का परम उल्लास लाकर अपने गृह में आ! अनादि के दु:खों से छूटने का ऐसा सुंदर मार्ग! उसे सुनकर मुमुक्षु जीव परम उल्लासपूर्वक आत्मा को साधते हैं। इसका नाम ज्ञान की सेवा है, यही मोक्षमार्ग है।

इस प्रकार ज्ञानस्वरूप आत्मा का जानकर उसकी सेवा करे, तब जीव के अज्ञान का व्यय होता है, सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होती और ज्ञानस्वरूप से स्वयं ध्रुव रहता है। ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप आत्मा है। आत्मा का ऐसा स्वरूप वीतराग-मार्ग में ही है।

वीतराग के मार्ग में ज्ञानी-संतों का उपदेश यही है कि हे जीव! ज्ञानस्वरूप अपने आत्मा को पहिचानकर उसकी अनुभूति कर। तू चैतन्य राजा और राग से अपने मोक्ष की भीख माँगे—यह तुझे शोभा नहीं देता। चैतन्य राजा राग की सेवा करे—यह उसे शोभा देगा? नहीं, यह तो मोह भजन है। चैतन्य राजा की सेवा रागरहित है। ज्ञान द्वारा चैतन्य राजा की सेवा करने से वह महान आनंद प्रदान करता है। शांति के, सुख के अपार निधान दे, ऐसा चैतन्य राजा है। उसके ज्ञान-श्रद्धा-एकाग्रता द्वारा अपूर्व मोक्षमार्ग प्रगट होता है। इसलिए हे मोक्षार्थी जीवो! तुम सतत ऐसे ज्ञानस्वरूप अपने को अनुभव करो... आनंद का धाम तुम स्वयं हो, उसे पहिचानकर उसमें निवास करो, यह मंगल वास्तु-प्रवेश है। [आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-11-12 (अप्रेल-1972), वर्ष-27]

समाधिमरण के अवसर पर आराधना में शूरवीर मुनिवर

हे जीव! वीर पुरुषों ने जो आराधना की है, वह तू भी उत्साहपूर्वक कर!

समाधिमरण में स्थित मुनिराज को आचार्य उपदेश देते हैं कि—हे क्षपकमुनि! रत्नत्रय में तथा उत्तम क्षमादि धर्म में सावधानीपूर्वक अपने चित्त को लगाओ! क्योंकि इस समय आराधना के उत्सव का महान अवसर है। आचार्य के ऐसे उल्लास वचनों से क्षपक मुनि का चित्त प्रसन्न एवं उज्ज्वल होता है। जिस प्रकार दीर्घ काल से प्यास मनुष्य अमृतजल के पान से तृप्त हो, उसी प्रकार आचार्य के उपदेशरूपी अमृत के पान द्वारा मुनि का चित्त आह्लादित होता है और आचार्य के प्रति नम्रीभूत होकर कहते हैं कि हे भगवान! आपका देखा हुआ सम्यग्ज्ञान मैंने शिरोधार्य किया है; अब जैसी आपकी आज्ञा हो, तदनुसार में प्रवर्तन करूँगा। समाधिमरण में मैं किंचित् भी शिथिलता नहीं आने दूँगा। आपके तथा संघ के प्रसाद से मेरा आत्मा जिस प्रकार इस संसार समुद्र से पार हो, तथा आप गुरुजनों की उज्ज्वल कीर्ति जगत में फैले और मेरे हित के लिए वैयावृत्य में उद्यत सकल संघ का परिश्रम सफल हो—इस प्रकार मैं उज्ज्वल निर्दोष आराधना को ग्रहण करूँगा।

इस प्रकार उन मुनि ने समाधिमरण हेतु आराधना में अपने परिणाम का उत्साह और परम शूरवीरता गुरु के समक्ष प्रगट की।

अहा, गणधरादि वीर पुरुषों ने जो आराधना की, और विषय-कषाय में डूबे हुए कायर पुरुष मन से जिसका चिंतवन करने में भी समर्थ नहीं; उस आराधना को मैं आपके प्रसाद से आराधूँगा। हे भगवान! आपके उपदेशरूपी ऐसे अमृत का आस्वादन करके कोई कायर पुरुष भी क्षुधा-तृषा या मरणादिक भय को प्राप्त नहीं होते, तो मैं क्यों भयभीत होऊँ?—नहीं होऊँगा; यह मेरा निश्चय है। हे देव! आपके चरणों के अनुग्रहरूप गुण के कारण मेरी आराधना में विघ्न डालने के लिए इन्द्रादिक देव भी समर्थ नहीं

हैं; तो फिर यह क्षुधा-तृषा-परिश्रम-वातपित्तादि रोग-इन्द्रियविषय या कषाय मेरे ध्यान में क्या बाधा डालेंगे ?—कुछ नहीं कर सकते।

आराधना में शूरवीर ऐसे क्षपक मुनिराज वीरतापूर्वक श्रीगुरु के प्रति कहते हैं कि कदाचित् मेरुपर्वत अपने स्थान से चलायमान हो जाए, या पृथ्वी उलट जाए, तथापि आप जैसे गुरु के चरण-प्रसाद के कारण मैं कभी विकृति को प्राप्त नहीं होऊँगा—आराधना से नहीं डिगूँगा।

इस प्रकार समाधिमरण के लिए जागृत ऐसे क्षपक मुनिराज अपनी शक्ति को छुपाए बिना वीरतापूर्वक कर्म को खिपाते हैं, तथा समाधिमरण करानेवाले निर्यापक आचार्य भी प्रमाद छोड़कर क्षपक मुनि का ज्ञान जागृत रहे, तद्नुसार निरंतर परम धर्म की आराधना का उपदेश देते हैं।

समाधिमरण में उत्साहित चित्तवाले वे क्षपकमुनि कदाचित् पापकर्म के उदय से क्षुधा-तृषा या वेदनादि की तीव्र पीड़ा द्वारा व्याकुल हो जाएं, परिणाम में शिथिल हो जाएं, अन्न-जल का स्मरण करें, तो ऐसे समय में करुणानिधान आचार्य स्वयं किंचित् भी धैर्य छोड़े बिना उन मुनि की 'सारणा' अर्थात् उनके रत्नत्रय की रक्षा का उपाय करते हैं, जिस प्रकार उनके परिणाम उज्ज्वल हों और चेतना जागृत रहे, तद्नुसार उन्हें संबोधन करते हैं।

क्षपक की सावधानी की परीक्षा करने के लिए बारंबार उससे पूछते हैं कि 'हे आत्मकल्याण के अर्थी! तुम कौन हो ? तुम्हारा पद क्या है ? तुम कहाँ निवास करते हो ? हम कौन हैं ?' इस प्रकार पूछने पर उन क्षपकमुनि की चेतना जागृत हो जाती है कि अरे! मैं तो मुनि हूँ, मैंने पंच महाव्रत सहित संन्यास धारण किया है, मैं अचेत होकर अयोग्य आचरण करूँ, वह मुझे शोभा नहीं देता। यह शिथिल परिणाम छोड़कर रत्नत्रयधर्म के पालन में मुझे सावधान रहना योग्य है। यह आचार्य परम उपकार करनेवाले गुरु हैं, वे मुझे जागृत कर रहे हैं; इसलिए अब सावधान होकर रत्नत्रय के सेवनसहित समाधिमरण करना उचित है।

इस प्रकार क्षपक की चेतना जागृत देखकर आचार्य भगवान अत्यंत वात्सल्यभाव से उसकी आराधना की रक्षा हेतु 'कवच' करते हैं। कवच अर्थात् बख्तर; जिस प्रकार युद्ध में कवच द्वारा चाहे जैसे प्रहार से रक्षा होती है, उसी प्रकार तीव्र वेदनादि चाहे जैसे परीषहों के बीच भी उल्लसित परिणाम द्वारा साधक के रत्नत्रय की रक्षा हो, उसके लिए आचार्य-महाराज उसे उत्तम वैराग्य से भरपूर आराधना के उपदेशरूपी कवच पहिनाते हैं।

आचार्य के उपदेश द्वारा सावधान होकर वह मुनि विचारता है कि अरे! महान अनर्थ है कि तीन लोक में दुर्लभ ऐसा साधुपना अंगीकार करके भी मैं असमय ही अन्न-जल की इच्छा करता हूँ! यह संन्यास का समय तो मुझे सर्व आहार-जल के त्याग का अवसर है। सर्व संघ की साक्षी से मैंने चारों प्रकार के आहार का त्याग किया है। अनंतानंत काल में जीव ने कभी संल्लेखना-मरण प्राप्त नहीं किया, इस समय श्रीगुरु के प्रसाद से उसकी प्राप्ति का अवसर आया है। अहा, समस्त विषयानुराग छोड़कर परम वीतरागता का यह अवसर है, इसलिए इस समय मुझे परम संयम में जागृत द्वारा आत्मकल्याण में सावधाना रहना चाहिए। इस प्रकार वह साधु जागृत होकर आराधना में उत्साहित होता है।

अब, कोई क्षपक साधु क्षुधा-तृषा-रोगादि की तीव्र वेदना से असावधान या शिथिल हो जाए, अयोग्य वचन बोले या रुदन करे तो आचार्य स्नेह पूर्ण आनंदकारी वचनों द्वारा उसे सावधान करे; स्वयं शिथिलतारहित होकर क्षपक की सावधान हेतु दृढ़ उपाय करे; उसे कटुवचन न कहे, उसका तिरस्कार न करे, उसे त्रास लगे या वह निरुत्साह हो जाए, ऐसा कुछ न करे; परंतु उसकी परीषह का निवारण करने के लिए, वह जागृत होकर आराधना में उत्साहित हो, ऐसा उपाय आदरपूर्वक करे।

जिस प्रकार रणक्षेत्र में अभेद्य कवच पहिनकर प्रवेश करनेवाला सुभट-योद्धा-शत्रुओं के बाण से नहीं छिदता; उसी प्रकार आराधना में सुभट ऐसे जो साधु संन्यास के अवसर में कर्मोदय के विरुद्ध लड़े जा रहे

महासंग्राम में गुरु-उपदेशरूपी अभेद्य कवच धारण करते हैं, वे रोगादिक तीव्र पीड़ारूप शस्त्र द्वारा नहीं छिदते।

क्षपक को आराधना में उत्साहित करने के लिए महाबुद्धिमान गुरु उपदेश-वचन कहते हैं;—कैसे वचन कहते हैं ?—स्नेह पूर्ण, कर्णप्रिय एवं आनंदकारी वचन कहते हैं कि जिन्हें सुनते ही सर्व दु:खों का विस्मरण हो जाये और सीधे हृदय में उतर जाएं, 'सुंदर चारित्र धारक हे मुनि! चारित्र में विघ्न करनेवाली इस अल्प या महान व्याधि की प्रबल वेदना को तुम दीनतारहित तथा मोहिरहित होकर धैर्यपूर्वक जीतो। समस्त उपसर्ग-परीषह को मन-वचन-काया से जीतकर मरणसमय में चारों प्रकार की सम्यक् आराधना के आराधक रहो।

रोगादिक व्याधि अशुभकर्म के उदय से आती हैं; इस समय दीन होकर वर्तोगे या धैर्य छोड़ दोगे तो उससे कहीं तुम्हारा उपद्रव दूर हो जानेवाला नहीं है। अपने ही परिणामों द्वारा उत्पन्न किये अशुभकर्म को दूर करने के लिए कोई देव भी समर्थ नहीं है; इसलिए रागादि प्रतिकूलता आने पर उसे कायरता छोड़कर, महान धैर्यपूर्वक, क्लेश बिना भोगना ही श्रेष्ठ है, जिससे आराधना में भंग न पड़े और पूर्वकर्म की निर्जरा हो तथा नवीन कर्म न बँधे।

हे चारित्रधारी! चार प्रकार के संघ के समक्ष तुमने ऐसी प्रतिज्ञा ली थी कि 'मैं आराधना धारण करता हूँ'—उसे क्या तुम भूल गए हो ? अपनी उस प्रतिज्ञा को तुम याद करो! क्या युद्ध का आह्वान करनेवाला शूरवीर शत्रु को देखकर भयभीत होकर भागता होगा ?—कदापि नहीं। उसी प्रकार सर्व संघ के समक्ष जिन्होंने आराधना की दृढ़ प्रतिज्ञा की है—ऐसे उत्तम साधु परिषहरूपी शत्रु को देखकर मुनिधर्म से क्या चलायमान होंगे ? विषाद क्यों करेंगे ? नहीं करेंगे। मरण आये, तो भले आये परंतु शूरवीर साधु आपत्तियों की अत्यंत तीव्र वेदना को भी समभावपूर्वक सहन करता है, परिणामों को विकृत नहीं होने देते; कायरता या दीनता नहीं करते।

अहा, जिनेन्द्र भगवान द्वारा आदरणीय ऐसी आराधना को मैंने धारण

किया है, अनंत भव में दुर्लभ ऐसा संयम मुझे वीतरागी गुरुओं के प्रसाद से प्राप्त हुआ है; तो अब जो रोगादि जनित उपसर्ग आता है, उसमें मरण हो तो भले हो, परंतु आराधना को छोड़ना योग्य नहीं है। एक बार मरना तो है ही, तो फिर गुरु के प्रताप से व्रतसहित मरण हो, उसके समान अन्य कोई कल्याण नहीं है। अरे! ऐसे अवसर में कायर होकर, व्रतादि में शिथिल होकर, विलाप करना या तुच्छ कार्य द्वारा रोगादि के इलाज की इच्छा करना, वह तो लज्जा और दुर्गति के दु:खों का कारण है;—तो ऐसा कौन करे? एक जीवन के लिए मुनिधर्म को या संघ को कलंक कौन लगाए? चाहे जैसी प्रतिकूलता आये परंतु शूरवीर पुरुष आराधना से विमुख नहीं होते, दीनता या कायरता नहीं करते।

जैसे—कोई पुरुष चारों ओर से अग्नि द्वारा दग्ध होते हुए भी—मानों पानी के बीच खड़ा हो—ऐसा शांत-निराकुल रहता है, उसीप्रकार धीरवीर साधुजन अग्नि के बीच भी निराकुलरूप से आराधना में स्थिर रहते हैं। अरे, स्वर्गादि परलोक संबंधी इन्द्रियसुख में लुब्ध अज्ञानी भी इन्द्रियसुख की अभिलाषा से संसारवर्द्धक लेश्यापूर्वक तीव्र वेदना सहन करते हैं, तो जिन्होंने समस्त संसार को अत्यंत दु:खरूप जाना है और जो संसारदु:ख से छूटकर मोक्षसुख को साधने में तत्पर हैं, ऐसे जैन मुनि क्या निराकुलरूप से वेदना में धैर्य धारण नहीं करेंगे? अवश्य करेंगे। चाहे जैसा रोग आये, तथापि उत्तम पुरुष अयोग्य औषधि (कन्दमूल आदि) का भक्षण नहीं करते। छोटी-बड़ी आपत्ति आने पर जो विषाद करता है, उसे वीर पुरुष कायर कहते हैं। धैर्यवान सत्पुरुषों का तो ऐसा स्वभाव है कि महान आपत्ति आने पर भी उनके परिणाम सागर की भाँति अक्षोभ तथा मेरु के समान अचल रहते हैं।

समस्त परिग्रह छोड़कर जिन्होंने अपने आत्मा को आत्मस्वरूप में ही स्थिर किया है और श्रुतज्ञान जिनका सहचर है—ऐसे उत्तम साधु को शेर फाड़ रहा हो, तथापि श्रेष्ठ ऐसे रत्नत्रय की साधना करते हैं, कायर बनकर शिथिल नहीं होते।

[ऐसे धीरवीर मुनिराजों के उदाहरण देते हैं:—]

❀ स्यालनी और उसके बच्चों द्वारा तीन रातों तक भक्षण किये जाने से जिनके शरीर में घोर वेदना उत्पन्न हुई, ऐसे वे नवदीक्षित सुकुमाल मुनि ध्यान द्वारा आराधना को प्राप्त हुए।

❀ भगवान सुकोशल मुनि को उनकी माता ने शेरनी होकर उनका भक्षण किया, तथापि वे उत्तम अर्थ को (रत्नत्रय के निर्वाह को) प्राप्त हुए।

❀ चलनी की भाँति कीलों द्वारा शरीर छिदने पर भी भगवान गजकुमार मुनि उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए।

❀ हे मुनि! देखो, सनत्कुमार नामक महा मुनि ने सैकड़ों वर्ष तक खुजली -बुखार-तीव्र क्षुधा-तृषा, वमन, नेत्रपीड़ा तथा उदरपीड़ा आदि अनेक रोगजनित दु:ख भोगने पर भी संक्लेश बिना सम्यक्रूप से सहन करते हुए धैर्यपूर्वक रत्नत्रयधर्म का पालन किया।

❀ एणिक पुत्र नामक साधु ने गंगा नदी के प्रवाह में बहते हुए भी निर्मोहरूप से चार आराधना प्राप्त करके समाधिमरण किया, परंतु कायरता नहीं की। इसलिए हे कल्याण के अर्थी साधु! तुम्हें भी धैर्य धारण करके आत्महित में सावधान रहना उचित है।

❀ भद्रबाहु मुनिराज घोरतर क्षुधावेदना से पीड़ित होने पर भी संक्लेशरहित बुद्धि का अवलंबन करते हुए, अल्पाहार नाम के तप को धारण करके उत्तम स्थान को प्राप्त हुए परंतु भोजन की इच्छा नहीं की।

❀ कोशाम्बी नगरी में ललितघटादि बत्तीस प्रसिद्ध महामुनि नदी के प्रवाह में डूबने पर भी निर्मोहरूप से प्रायोपगमन संन्यास को धारण करके आराधना को प्राप्त हुए।

❀ चंपानगरी के बाहर गंगा के किनारे धर्मघोष नामक महामुनि एक मास के उपवास धारण करके असह्य तृषा की वेदना होने पर भी संक्लेशरहित उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए; आराधनासहित समाधिमरण किया; तृषा की वेदना से पानी की इच्छा नहीं की; संयम से नहीं डिगे, परंतु धैर्य धारण करके आत्मकल्याण किया।

❀ पूर्वजन्म के बैरी देव ने विक्रिया द्वारा घोर शीतवेदना की, तथापि श्रीदत्त मुनि संक्लेशक बिना उत्तम स्थान को प्राप्त हुए।

❀ वृषभसेन नामक मुनि उष्ण वायु, उष्ण शिला-तल तथा सूर्य का उष्ण आतप संक्लेशरहित सहन करके उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए।

❀ रोहेडग नगरी में अग्निपुत्र का क्रोच नामक शत्रु ने शक्ति-आयुष द्वारा घात कर दिया, तथापि उस वेदना को सहन करके वे उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए।

❀ काकंदी नगरी में चंडवेग नामक शत्रु ने अभयघोष मुनि के सर्व अंग छेद डाले; वह घोर वेदना पाकर भी वे उत्तम अर्थ ऐसे रत्नत्रय को प्राप्त हुए।

❀ विद्युत्चर मुनि डांस-मच्छर द्वारा भक्षण की अति घोर वेदना को संक्लेशरहित सहन करके उत्तम अर्थरूप आत्मकल्याण को प्राप्त हुए।

❀ हस्तिनापुर के गुरुदत्त मुनि द्रोणमति (द्रोणिगिरि) पर्वत पर, हंडी के अनाज की भाँति दग्ध होने पर भी उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए।

❀ चिलातपुत्र नामक मुनि को किसी पूर्वभव के शत्रु ने तीक्ष्ण आयुध द्वारा घाव कर दिया; उस घाव में बड़े-बड़े कीड़े पड़ गये और उन कीड़ों से उनका शरीर चलनी की भाँति विंध गया, तथापि संक्लेशरहित समभाव से वेदना सहन करके वे उत्तमार्थ को प्राप्त हुए।

❀ यमुनावक्र के तीक्ष्ण बाणों द्वारा जिनका शरीर छिद गया है, ऐसे दंडमुनिराज घोर वेदना को भी समभाव से सहन करके उत्तमअर्थरूप आराधना को प्राप्त हुए।

❀ कुम्भकार नगरी में कोल्हू में पिलने पर भी अभिनंदनादिक पाँच सौ मुनि समभावपूर्वक आराधना को प्राप्त हुए।

❀ सुबन्धु नामक शत्रु ने गौशाला में आग लगा दी; उसमें जलने पर भी चाणक्य मुनिराज प्रायोपगमन संन्यास धारण करके संक्लेशरहित उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए।

शेष पृष्ठ 25 पर...

भगवान आचार्यदेव
श्री वज्रसूरि अपरनाम वज्रनन्दि

आचार्य वज्रसूरि, आचार्य देवनन्दि-पूज्यपाद के शिष्य वज्रनन्दि जान पड़ते हैं। हरिवंशपुराण में आपके संबंध में कहा है—

वरसूरेर्विचारिण्य सहेत्वोर्बन्धमोक्षयोः।
प्रमाणं धर्मशास्त्राणां प्रवक्तृणामिवोक्तयः॥

अर्थ :- जो हेतु सहित बंध और मोक्ष का विचार करनेवाली हैं, ऐसी श्री वज्रसूरि की उक्तियाँ धर्मशास्त्रों का व्याख्यान करनेवाले गणधरों की उक्तियों के समान प्रमाणरूप हैं।

इस कथन से यह ध्वनित होता है, कि वज्रसूरि प्रसिद्ध सिद्धांतशास्त्र के वेत्ता हुए हैं। आपके वाक्य गणधरों के वाक्यों के समान माने जाते हैं। अपभ्रंश भाषा के कवि धवल ने अपने हरिवंश पुराण में लिखा है— वज्जसूरि सुपसिद्धउ मुणिवरु, जेण पमाणगंथु किउ चंगउ।

अर्थात् वज्रसूरि नाम के प्रसिद्ध मुनिवर हुए, जिन्होंने सुंदर प्रमाणग्रंथ बनाया। आचार्य जिनसेन और कवि धवल, दोनों ने ही वज्रसूरि का उल्लेख पूज्यपादस्वामी के पश्चात् किया है। अतएव ये वही वज्रनंदि मालूम होते हैं, जो पूज्यपाद के शिष्य थे। जिन्हें आचार्य देवसेनसूरि ने अपने दर्शनसार में द्राविडसंघ का बतलाया है; परंतु उस द्राविडसंघ से आप भिन्न प्रतीत होते हैं, क्योंकि वह द्रविड़ संघ भगवान पूज्यपादस्वामी के काफी समय के बाद चला था। 'नवस्तोत्र' के अतिरिक्त इनका कोई प्रमाणग्रंथ भी था। आचार्य जिनसेनजी के उल्लेख से आपका कोई सिद्धांतग्रंथ होने की भी संभावना की जा सकती है।

आपका अपरनाम वज्रनंदि था।

आपका समय ईस. ४४२-४६४ ही प्रतीत होता है।

आचार्यदेव श्रीवज्रसूरि भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
श्री यशोभद्र

प्रखर तार्किक के रूप में भगवान जिनसेनजी ने आपका स्मरण किया है। आदिपुराण में बताया है—

विदुष्विणीषु संसत्सु यस्य नामापि कीर्तितम्।
निखर्वयति तद्गर्व यशोभद्रः स पातु नः॥

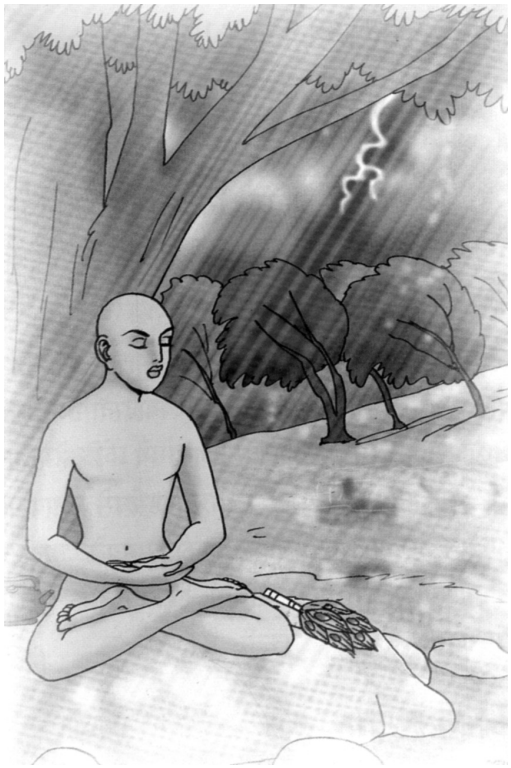

अर्थात् विद्वानों की सभा में जिनका नाम कह देने मात्र से सभी का गर्व दूर हो जाता है, वे यशोभद्र हमारी रक्षा करें।

जैनेन्द्र व्याकरण में 'क्ववृषिमृजां यशोभद्रस्य' (1-1-99) सूत्र आया है। अतः आचार्य जिनसेनजी के द्वारा उल्लिखित आचार्य यशोभद्रजी और आचार्य पूज्यपाद के जैनेन्द्र व्याकरण में निर्दिष्ट भगवान यशोभद्रजी एक ही है। पर समय की अपेक्षा योग्य नहीं प्रतीत होता है।

आपका समय ईसु की छठी शती मध्यपाद होना चाहिए।

आचार्यदेव यशोधर भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
श्री जोईन्दु अपरनाम योगीन्दु

सनातन जिनशासन में हुए अत्यंत विरक्त चित्त जोईन्दु या योगीन्द्र एक आध्यात्मिकवेत्ता आचार्य थे। उनके जीवन-वृत्त के बारे में न तो आपके ग्रंथों में से कोई सामग्री उपलब्ध होती है और न ही अन्य वाङ्मय से। फिर भी आप दिगम्बर आचार्य होने के पूर्व में वैदिक मतानुसारी रहे होंगे, क्योंकि आपकी कथनशैली में वैदिक मान्यता के शब्द बहुलता से आते हैं। तदुपरांत आपके ग्रंथ परमात्मप्रकाश व अन्य ग्रंथों से इतना स्पष्ट भासित होता है कि जिन वाङ्मय में आपको जोइन्दु, योगीन्दु, जोगीचंद्र, योगीचंद्र आदि विविध नामों से पुकारा गया है, परंतु विद्वानों के मतानुसार आपका नाम 'जोइन्दु' या 'योगीन्दु' ही था, बाकी सभी 'जोइन्दु' के भाषानुवाद का फरक है।

आपके शिष्य का नाम प्रभाकर भट्ट था, ऐसा परमात्मप्रकाश ग्रंथ पर से प्रतीत होता है। आपके परमात्मप्रकाश व योगसार के विषयानुसार आप कवि के ब-निस्बत अध्यात्मरसिक अधिक थे, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि आपने उक्त दोनों ग्रंथों में अध्यात्मतत्त्व को सुंदर, गहन व गूढतया भर दिया है। आपका अपभ्रंश भाषा पर अपूर्व अधिकार था। आपके ग्रंथों से यह भी पता चलता है कि आप क्रांतिकारी विचारधारा के प्रवर्तक थे, क्योंकि आप अध्यात्म को जलद शब्दों में इस तरह रखते, कि सुनते ही एकबार सुननेवाले का मोह, (मिथ्या मान्यता) तो हिल ही जाए। इसलिए ही विद्वानों का मानना है, कि जैसे 'कबीर' ने अन्यमत में जिस क्रांतिकारी विचारधारा की प्रतिष्ठा की है, उसका मूल स्रोत आपकी रचना में पाया जाता है। आपकी लेखन शैली में आपने भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव व पूज्यपादस्वामी का बहुत ही अनुसरण किया है, ऐसा प्रतीत हुए बिना नहीं रहता।

आपने अपभ्रंश व संस्कृत के अनेक ग्रंथ रचे हैं, उनमें से निम्न विशेष प्रसिद्ध हैं। (1) स्वानुभवदर्पण, (2) परमात्मप्रकाश, (3) योगसार,

(4) दोहापाहुड, (5) सुभाषिततंत्र, (6) अध्यात्मरत्नसंदोह, (7) तत्त्वार्थ टीका, (8) अमृताशीति व निजात्माष्टक, (10) नौकार श्रावकाचार। इन ग्रंथों में परमात्मप्रकाश व योगसार के अलावा बाकी सभी इन्हीं आचार्य जोइन्दुदेव की रचना है, या अन्य योगीन्दु की—यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता।

भगवान श्री कुन्दकुन्दस्वामी व पूज्यपादस्वामी के पश्चात् अर्थात् ईसा की छठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आप होने चाहिए—ऐसा विद्वानों का मत है।

अध्यात्मरसिक आचार्यदेव श्री योगीन्दुदेव को कोटि कोटि वंदन।

पृष्ठ 21 का शेष...

समाधिमरण के अवसर पर...

❀ कुलालग्राम के उद्यान में रिष्टामच्य नामक शत्रु ने मुनियों के निवास-स्थान को आग लगा दी; उसमें दग्ध होने पर भी मुनियों की सभासहित वृषभसेन मुनिराज ने आराधना प्राप्त की।

—इस प्रकार उपसर्गादि वेदना प्रसंग पर भी आराधना में अडिग रहनेवाले अनेक शूरवीर मुनिवरों का स्मरण कराके, आचार्य महाराज उन क्षपक मुनि को उत्साहित करते हुए कहते हैं कि हे मुनि! इतने-इतने मुनिवरों ने घोर उपसर्गों की तीव्र वेदना सहन की; वे असहाय एकाकी थे; कोई इलाज करनेवाला या वैयावृत्य करनेवाला भी नहीं था; तथापि कायरता छोड़कर वीरतापूर्वक परम धैर्य धारण करके वे उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए, आराधना से नहीं डिगे; तो फिर तुम्हारी सहायता में तो यह सब मुनि हैं, सब संघ तुम्हारे इलाज और वैयावृत्य में तत्पर है, तो तुम आराधना में उत्साहित क्यों नहीं होते?—कायरता छोड़ो, और वीरतापूर्वक आराधना में उद्यम बनो... यह आराधना का अवसर है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-10 (फरवरी-1972), वर्ष-27]

संसार की स्थिति और धर्मात्मा की नि:शंकता

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के लाठी पंचकल्याणक से)

इस संसार में अज्ञानरूप से परिभ्रमण करते हुए पूर्वभव की माता का स्त्रीरूप में तूने अनंत बार उपभोग किया; अरे जीव! स्वर्ग-नरक के और कौए-कुत्ते के अनंत भव तूने किये हैं। उनमें एक भव में जो तेरी माता थी वही दूसरे भव में तेरी स्त्री हुई; एक भव में जो तेरी स्त्री थी वही दूसरे भव में तेरी माता हुई; एक भव में जो तेरा बंधु था वही दूसरे भव में तेरा शत्रु हुआ... अहो! धिक्कार है ऐसे संसार को... ऐसा संसार अब हमें स्वप्न में भी नहीं चाहिए... इस संसारभाव को धिक्कार है कि जिसमें, जिसके पेट में नव महीने रहकर मातारूप से स्वीकार किया हो उसी को दूसरे भव में स्त्रीरूप से भोगना पड़े... अरे! यह संसार...! अनंत काल तक आत्मा के भान बिना ऐसे संसार में परिभ्रमण किया... अब हम इस संसार में पुन: अवतार नहीं लेंगे। हम आत्मा के भानसहित तो अवतरित हुए ही हैं, और अब इसी भव में मोक्ष प्राप्त करनेवाले हैं... अब पुन: इस संसार में नवीन देह धारण नहीं करेंगे...

देखो तो! यह है धर्मात्मा की नि:शंकता! भगवान शांतिनाथस्वामी कहते हैं कि इस संसार के राग को छोड़कर आज हम अपने चारित्रधर्म को अंगीकार करेंगे... और इसी भव में पूर्ण परमात्मा होंगे... अब हम दूसरा भव धारण नहीं करेंगे। जीव ने अनंत संसार में परिभ्रमण करते हुए जिसे प्राप्त नहीं कर पाया—ऐसी एक मुक्तिदशा ही है, उसे हम प्राप्त करेंगे।

देखो, अंतर में चैतन्यस्वभाव के बलपूर्वक की यह भावना है। सम्यग्दृष्टि के अतिरिक्त अन्य किसी को तो—तीर्थंकर भगवान की कैसी भावना थी—उसका स्वरूप समझना भी कठिन है, उसे सच्ची भावना कहाँ से होगी? चैतन्यस्वरूप की ओर की उन्मुखता के बल में शांतिनाथ भगवान भव, तन और भोग से उदास-उदास हो गये हैं; श्मशान जाने की तैयारी में पड़े हुए मुर्दे की शोभा की भाँति उदास हैं, अर्थात् जिस प्रकार कोई श्मशान की तैयारीवाले मुर्दे का हार-फूलों से शृंगार करे तो उससे कहीं मुर्दा प्रसन्न

नहीं होता, क्योंकि मोह करनेवाला भीतर से चला गया है। उसी प्रकार भगवान का आत्मा सारे संसार से उदासीन हो गया है, क्योंकि भीतर का मोह मर गया है। अपने चैतन्य के आनंद के निकट यह पुण्य-पाप या शरीर भोग आदि हमें अच्छे नहीं लगते; जागृत चैतन्य की सत्ता के निकट तो यह सब मुर्दे के समान मालूम होते हैं।—ऐसे भान सहित भगवान चारित्रदशा अंगीकार करते हैं।

❀ ❀ ❀

गुरु का महत्त्व

आज के समय में जीव को किस चीज़ की जरूरत है ? मात्र मार्गदर्शन की। एक सच्चा मार्गदर्शक, जीव को सदैव लक्ष्य तक पहुँचा देता है।

गुरु सदैव अपने जीवन को कल्याणमय बनाते हैं और अपने शिष्य को भी कल्याण का मार्ग बताते हैं। जैस कुन्दकुन्द आदि आचार्य; टोडरमलजी, दौलतरामजी आदि महान विद्वानों व कानजीस्वामीजी, गोपालदास बरैया आदि गुरुओं के परम उपकार द्वारा हम कल्याण को प्राप्त हो रहे हैं। गुरुओं का हम पर इतना उपकार है जिसे हम कभी भी चुका नहीं सकते, उसी प्रकार जिस प्रकार हमारे माता-पिता कर रहे हैं। गुरु कभी कठोरता से तो कभी कोमलता से हमारे कार्य की अच्छाई व त्रुटियाँ निकालते हैं, पर सदैव वो हमें अपने कार्य को अच्छा करने का उपाय बताते हैं; भले ही हमें उनका तरीका पसंद न आए, पर वह सदा हमारे अच्छे के लिए होता है। माता-पिता भी हमारे प्रथम शिक्षक होते हैं क्योंकि प्रारम्भिक शिक्षा की नींव वही रखते हैं। अत: सर्व प्रथम हमें उनका भी उपकार मानना चाहिए, हमें सदैव उनके सम्मान के लिए तत्पर रहना चाहिए।

हमारा सदैव यह कर्तव्य रहना चाहिए कि जिनसे भी अर्थात् गुरु व माता-पिता व अन्य गुणीजनों; जिनके द्वारा हमारा पथ प्रकाशित किया व सही मार्गदर्शन दिया, उस पर चलकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करें।

मङ्गलार्थी कृतिकराज जैन, कक्षा 9

उपदेश सिद्धांत रत्नमाला

गृहस्थ को सम्यग्दर्शन महा दुर्लभ है

गिहवावार विमुक्के, बहु मुणि लोए वि णत्थि सम्मत्तं।
आलंबण-णिलयाणं, सद्धाणं भाय! किं भणिमो॥64॥

भावार्थ - कई अज्ञानी जीव अपने को सम्यग्दृष्टि मानकर अभिमान करते हैं, उनको आचार्य कहते हैं कि 'हे भाई! पंच महाव्रत के धारी मुनि भी स्व-पर को जाने बिना द्रव्यलिंगी ही रहते हैं तो फिर गृहस्थों की तो क्या बात अत: जिनवाणी के अनुसार तत्त्वों के विचार में उद्यमी रहना योग्य है। थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त करके अपने को सम्यक्त्वी मानकर प्रमादी होना योग्य नहीं है॥64॥

उत्सूत्रभाषी भव समुद्र में डूब जाता है

ण सयं ण परं कोवा, जइ जिअ उस्सुत्त-भासणं विहियं।
ता वुड्डसि णिज्झंतं, णिरत्थयं तव कुडाडोवं॥65॥

भावार्थ - कितने ही जीव व्रत-उपवासादि तपश्चरण तो करते हैं परंतु जिनवचनों का श्रद्धान नहीं करते हैं सो उनका समस्त आडंबर वृथा है। अत: सम्यक् श्रद्धानपूर्वक ही क्रिया करनी योग्य है॥65॥

निर्मल श्रद्धान से लोकरीति में भी धर्मप्रवृत्ति

जह जह जिणिंद वयणं, सम्मं परिणमइ सुद्ध हिययाणं।
तह तह लोयपवाहे, धम्मं पडिहाइ ण दुच्चरियं॥66॥

भावार्थ - जीवों के जैसे-जैसे श्रद्धान निर्मल होता जाता है वैसे-वैसे लोक व्यवहार में भी उनकी धर्मरूप प्रवृत्ति होती जाती है और लोकमूढ़ता रूप खोटा आचरण छूटता जाता है॥66॥

जिनधर्म के सामने मिथ्या धर्म तृण तुल्य हैं

जाण जिणिंदो णिवसइ, सम्मं हिययम्मि सुद्धणाणे।
ताण तिणं व विरायइ, मिच्छाधम्मो इमो सयलो॥67॥

भावार्थ - जो जीव वीतराग देव के सेवक हैं, उन्हें सरागियों द्वारा कहा गया मिथ्या धर्म तुच्छ भासता है, उनका अभ्युदय देखकर वे मन में आश्चर्य नहीं

करते। वे यही जानते हैं कि यह विषय मिश्रित भोजन है जो वर्तमान में तो भला दिखाई देता है किंतु परिपाक में अतिशय हानिकारक है ॥67॥

अहो! लोकमूढ़ता प्रबल है

लोयपवाह-समीरण, उद्दण्ड पयण्ड लहरीए।
दिढ़ सम्मत्त महाबल, रहिआ गुरुआ वि हल्लंति॥68॥

भावार्थ - समस्त मूढ़ताओं में लोकमूढ़ता ही प्रबल है जिससे बड़े-बड़े पुरुषों का भी श्रद्धान शिथिल हो जाता है। इसलिए जैसे भी बने वैसे जिनमत का श्रद्धान दृढ़ करना और लोकरीति में मोहित नहीं होना, क्योंकि इसे सब लोग करते हैं। इसलिए कुछ तो इसमें सार है—ऐसा न जानना ॥68॥

जिनमत की अवज्ञा न कर, दु:ख मिलेगा

जिणमय अवहीलाए, जं दुक्खं पावणंति अण्णाणी।
णाणीण संभरिता, भयेण हिययं थरत्थरइ॥69॥

अर्थ - कई अज्ञानी जीव जिनमत की अवज्ञा करते हैं और उससे नरकादि में घोर दु:ख भोगते हैं, उन दु:खों का स्मरण करने से ही ज्ञानी पुरुषों का हृदय भय से थर-थर कांपता है ॥69॥

सम्यक्त्व के बिना तू दोषी ही है

रे जीव अणाणीणं, मिच्छादिट्ठीण णिअसि किं दोसो!
अप्पा वि किं ण याणसि, ण जइ काठ्ठण्ण सम्मत्तं॥70॥

अर्थ - हे जीव! तू अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों के दोषों का क्या निश्चय करता है, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं हीं, तू अपने को ही क्यों नहीं जानता? यदि तुझे निश्चल सम्यक्त्व नहीं हुआ है तो तू भी तो दोषी ही है, इसलिए जिनवाणी के अनुसार श्रद्धान दृढ़ करना—यह तात्पर्य है ॥70॥

शुद्ध जिनधर्म चाहिए तो मिथ्या आचरण छोड़

मिच्छत्तमायरंत वि, जे इह वंछंति सुद्ध जिणधम्मं।
ते धत्ता वि जरेण य, भुत्तुं इच्छंति खीराइं॥71॥

भावार्थ - कोई-कोई जीव कुदेव-सेवन आदि मिथ्या आचरण को तो छोड़ते नहीं हैं और कहते हैं कि 'यह तो व्यवहार मात्र है, श्रद्धान तो हमें जिनमत

का ही है।' उनको आचार्यदेव कहते हैं कि 'हे भाई! जब तक रागी-द्वेषी देवों की सेवा तुम्हारे है तब तक तो तुम्हें सम्यक्त्व का एक अंश भी होना असंभव है। इसलिए मिथ्या देवादि का प्रसंग तो दूर ही से छोड़ देना और तब ही सम्यक्त्व की कोई बात करना—ऐसा ही अनुक्रम है' ॥71॥

आचरण से साध्य की सिद्धि, कुल से नहीं

जह केइ सुकुल बहुणो, सीलं मइलंति लिंति कुल णामं।
मिच्छत्तमायरंत वि, वहंति तह सुगुरु केरत्तं॥72॥

भावार्थ - इस काल में जैनमत में भी पीतांबर, रक्तांबर आदि वेषधारी हुए हैं, वे भगवान की आज्ञा की विराधना करके वस्त्रादि परिग्रह धारण करते हुए भी अपनी भट्टारक, आचार्य आदि पदवी मानते हैं और कहते हैं कि 'हम गणधर आदि के कुल के हैं।' उनसे यहाँ कहते हैं कि 'जो अन्यथा आचरण करेगा वह मिथ्यादृष्टि ही है, कुल से कुछ साध्य की सिद्धि नहीं है। जैसे कोई बड़े कुल की भी स्त्री हो पर यदि वह कुशील का सेवन करे तो कुलटा ही है, कुलीन नहीं ॥72॥

उत्सूत्र आचरण करनेवाला श्रावक नहीं

उस्सुत्तमायरंत वि, ठवंति अप्पं सुसावगातम्मि।
ते सदरिद्द धत्थ वि, तुलंति सरिसं धणाड्ढेहिं॥73॥

भावार्थ - कितने ही जीवों के देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा आदि का तो कुछ भी ठीक नहीं होता और अनुक्रम का भंग करके किसी भी प्रकार की कोई प्रतिज्ञा आदि लेकर अपने को श्रावक मानने लगते हैं, पर वास्तव में वे श्रावक नहीं हैं। श्रावक तो वे तब ही होंगे जब यथायोग्य आचरण करेंगे ॥73॥

निर्णय करके धर्म धारण करना योग्य है

किवि कुल कम्मम्मि रत्ता, किवि रत्ता सुद्ध जिणवरमयम्मि।
इय अंतरम्भि पिच्छह, मूढाणं यं ण याणंति॥74॥

भावार्थ - स्वयं परीक्षापूर्वक निर्णय किए बिना मात्र कुलक्रम के अनुसार जो जीव धर्म को धारण करते हैं तो यदि उनके कुल के लोग धर्म को छोड़ते हैं तो वे भी छोड़ देते हैं परंतु जो जीव परीक्षापूर्वक निर्णय करके सच्चे जिनधर्म को धारण करते हैं, वे कभी भी धर्म से चलायमान नहीं होते इसलिए आचार्य कहते

हैं कि 'जिनवाणी के अनुसार देव, गुरु और धर्म का यथार्थ स्वरूप पहिचानकर ही धर्म धारण करना भला है' ॥74॥

मिथ्यादृष्टियों के धर्म का आचरण योग्य नहीं

संगो वि जाण अहिओ, तेसिं धम्माइ जे पकुव्वंति।
मुत्तूण चोरसंगं, करंति ते चोरियं पावा॥75॥

भावार्थ - कितने ही जीव अपने को धर्मात्मा कहलवाने के लिए स्वयं मिथ्यादृष्टियों की संगति तो नहीं करते परंतु उनके द्वारा कहा गया जिनाज्ञा रहित कुदेवों का पूजनादि आचरण रूप कार्य करते रहते हैं, वे पापी ही हैं, इसलिए मिथ्यादृष्टियों द्वारा कहा हुआ आचरण रंचमात्र भी करना योग्य नहीं है ॥75॥

वीतरागी की अवहेलना के कार्य न कर

जत्थ पसु महिस लक्खा, पव्वे होमंति पाव णवमीए।
पूयंति तं पि सड्ढा, हा! हीला वीयरायस्स॥76॥

अर्थ - जिस पापनवमी[1] के दिन लाखों पशुओं-भैंसों आदि की बलि चढ़ाई जाती है, उस पापनवमी को भी कई लोग पूजते हैं और श्रावक कहलाते हैं। सो हाय! हाय!! वे तो वीतराग देव की निंदा कराते हैं। लोग कहते हैं कि 'देखो! जैनी भी ऐसा कार्य करते हैं।' इससे सच्चे जैनियों को लज्जा आती है और जैनधर्म की अप्रभावना होती है ॥76॥ साभार : उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला

1. विजयादशमी (दशहरे) से पहला दिन 'पापनवमी' कहलाता है।

समाधि शतक मण्डल विधान सानन्द संपन्न

अजमेर : श्री वीतरागविज्ञान स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट द्वारा अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर दिनांक 16 नवम्बर से 23 नवम्बर 2018 तक श्री सीमन्धर जिनालय पुरानी मण्डी, अजमेर में श्री समाधि शतक मण्डल विधान उत्साहपूर्वक सानन्द संपन्न हुआ। विधिविधान का संपूर्ण कार्य पंडित यशजी पिड़ावा द्वारा कराया गया। दोपहर और रात्रि में पंडित प्रकाशचंद झांझरी उज्जैन द्वारा स्वाध्याय कराया गया।

श्रीमती सरोज पाण्डया एवं श्रीमती अर्चना जैन ने विधान में सहयोग किया। ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री नरेश लुहाड़िया दिल्ली एवं ट्रस्टी श्री विनय लुहाड़िया परिवार ने उत्साहपूर्वक प्रत्येक गतिविधि में भाग लिया। संयोजक : प्रकाशचन्द पाण्ड्या

समाचार-दर्शन

भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सानन्द संपन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ एवं श्री कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन के संयुक्त तत्त्वावधान में 05 नवम्बर से 10 नवम्बर 2018 तक भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सानन्द संपन्न हुआ। इस अवसर पर पंडित श्री विमलदादा झांझरी, उज्जैन; बालब्रह्मचारी श्री सुमतप्रकाशजी जैन, खनियांधाना; डॉ० संजीव गोधा, जयपुर; डॉ० योगेश जैन, अलीगंज; पंडित अरिहन्त झांझरी, उज्जैन; पंडित श्री नगेश जैन, पिडावा, पंडित श्री धर्मेन्द्र शास्त्री, कोटा; पंडित संजीव जैन, दिल्ली; पंडित श्री अशोक लुहाड़िया; पंडित श्री सचिन जैन; प्रो. जयंतीलाल जैन; पंडित अजितजी अचल; पंडित श्री सुधीर शास्त्री; पंडित श्री सचिन्द्र शास्त्री आदि विद्वत् जनों ने ज्ञानगंगा प्रवाहित की।

प्रथम दिन मङ्गल कलश शोभायात्रापूर्वक ध्वजारोहण एवं 170 तीर्थंकर विधान प्रारंभ हुआ। विधि-विधान का एवं शिविर संचालन का समस्त कार्य पंडित संजय शास्त्री एवं संयोजन पंडित सुधीर शास्त्री ने किया। प्रतिदिन प्रात: प्रौढ़ कक्षा पंडित सचिन शास्त्री ने पाँच भावों पर ली। विधि-विधान के पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का वीडियो प्रवचन हुआ। तत्पश्चात् पंडितश्री विमलदादा झांझरी द्वारा नियमसार, डॉ. संजीव गोधा द्वारा पाँच लब्धि एवं ब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी द्वारा 'मेरा सहज जीवन' विषय पर सुंदर कक्षाएँ ली गईं।

दोपहर काल में मङ्गलार्थी स्वाध्याय, डॉ० योगेशजी, पंडित धर्मेन्द्रजी, पंडित अजितजी अचल, डॉ० जयंतीलालजी आदि का व्याख्यान हुआ। तत्पश्चात रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर पंडित संजय शास्त्री द्वारा कक्षा ली गई।

रात्रिकालीन कार्यक्रम में व्याख्यानमाला, जिनेन्द्र भक्ति मानस्तम्भ परिसर पर संपन्न हुई। तत्पश्चात् डॉ० संजीव गोधा द्वारा पंच परावर्तन, तीन लोक एवं ब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी द्वारा 'सहज जीवन' पर अद्भुत व्याख्यान हुए। सांस्कृतिक कार्यक्रम की शृंखला में उज्जैन द्वारा ब्रह्मचारी समताबेन, ज्ञानधाराबेन, श्रीमती अमिधारा जैन द्वारा वैराग्यधारा प्रस्तुत की गई। मङ्गलायतन के मङ्गलार्थियों द्वारा अमर बलिदान एवं भव-भव की दस्तक नाटक की अद्भुत प्रस्तुति प्रस्तुत की गई।

07 नवम्बर भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव के अवसर पर कृत्रिम कैलाशपर्वत पर, कृत्रिम पावापुरी की रचना बनाकर भगवान महावीर का निर्वाण कल्याणक धूमधाम से मनाया गया। जिसमें शुद्ध दिगम्बर तेरापंथी आम्नाय से निर्मित निर्वाण श्रीफल चढ़ाये गए। पंडित संजय शास्त्री द्वारा निर्वाण का अद्भुत दृश्य दिखाया गया।

अंतिम दिन श्री अजितप्रसाद जैन की अध्यक्षता में समापन समारोह हुआ एवं मङ्गलार्थियों को पारितोषिक वितरण किया गया। इस अवसर पर पंडितश्री विमलदादा झांझरी एवं श्री पवन जैन तथा श्री स्वप्निल जैन ने यह भावना व्यक्त करते हुए कहा कि – यह शिविर निरंतर दीपावली पर सदा लगाया जाता रहेगा।

वैराग्य समाचार

देहरादून : श्रीमती शकुन्तलादेवी जैन धर्मपत्नी श्री चतरसेन जैन का आकस्मिक निधन हो गया, जिससे देहरादून और उत्तराखण्ड समाज में शोक व्याप्त हो गया। आप एक अत्यन्त धार्मिक महिला थीं। तीर्थधाम मङ्गलायतन से जुड़ी हुई थीं। पंडित कैलाशचन्दजी से तत्त्वज्ञान सीखा था। शोक संतप्त परिवार इनके मार्ग पर चलता हुआ अपने परिणामों में वैराग्य एवं तत्त्वज्ञान बढ़ाए – ऐसी मङ्गलायतन परिवार की भावना है।

सहारनपुर : लाला श्री अभिनन्दनकुमारजी जैन, सहारनपुर का स्वर्गवास 15.11.2018को शान्तपरिणामपूर्वक हो गया। आप जिनधर्म के अनन्य भक्त, सरल स्वभावी एवं स्वाध्यायी जीव थे। तीर्थधाम मङ्गलायतन से आपका सदा जुड़ाव रहा। तीर्थधाम मङ्गलायतन में कृत्रिम कैलाशपर्वत पर विराजमान मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान की जिनबिम्ब आपने ही प्रदान की थी।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त हो ऐसी मंगल कामना है।

दिल्ली : श्रीमती प्रकाशवती जैन, मातुश्री आदिशजी जैन दिल्ली का स्वर्गवास 90 वर्ष की अवस्था में, शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया। आप एक धार्मिक स्वभाव की महिला थीं। जिनधर्म के प्रति आपकी अपार आस्था थी। आप शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त हों ऐसी भावना है।

बेगू : श्रीमती प्यारबाईजी धर्मपत्नी स्व० श्री नेमीचन्दजी बेगू का स्वर्गवास शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया। आप शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त हों ऐसी भावना है।

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन सत्र 19-20 प्रवेश प्रारंभ

(फार्म जमा करने की अन्तिम तिथि - 28 फरवरी 2019;
01 अप्रेल से 05 अप्रेल 2019 प्रवेश साक्षात्कार शिविर)

सद्धर्म प्रेमी बन्धुवर सादर जयजिनेन्द्र

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन मङ्गलायतन में प्रवेश प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है। वर्तमान युग में अपने कोमलमति बालक और युवाओं में धर्म, संस्कार एवं नैतिक शिक्षा के साथ उच्च शिक्षा देना चाहते हो तो अवश्य ही 28 फरवरी 2019 तक अपने प्रवेश फार्म मङ्गलायतन ऑफिस में जमा करायें।

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन लगातार उन्नति के शिखर को छू रहा है। यहाँ से निकले मङ्गलार्थी उच्च स्तर की प्रशासनिक एवं राष्ट्रीय सेवाएँ देते हुए समाज को तत्त्वज्ञान की शिक्षा दे रहे हैं। स्व-पर कल्याण करते हुए वीतरागी जिनमार्ग को घर-घर पहुँचा रहे हैं।

यदि आप भी चाहते हैं कि आज की पीढ़ी पाप के दलदल में न फँसे, सन्तोषपूर्वक आत्मकल्याण करते हुए अपना जीवन सफल करे तो अवश्य ही भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में अपने बालकों का प्रवेश करायें।

प्रवेश के योग्य अभयार्थी की पात्रता

(1) सातवीं कक्षा में कम से कम 60 प्रतिशत अंक से पास हो। (2) फार्म भरते समय छठी कक्षा में भी कम से कम 60 प्रतिशत अंक हों। (3) सातवीं कक्षा में अंग्रेजी माध्यम से ही पढ़ता हो। (4) शरीर में कोई असाध्य रोग न हो। (5) जैन धर्मानुसार अभक्ष्य भक्षण नहीं करता हो। (6) जैन धर्म पढ़ने की रुचि रखता हो।

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन की विशेषताएँ

(1) पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा उद्घाटित वीतरागी तत्त्वज्ञान का गहरा अध्ययन। (2) धार्मिक, नैतिक, सांस्कारिक, सामाजिक, लौकिक, पारलौकिक, आध्यात्मिक, सैद्धांतिक आदि विद्याध्ययन करने का अवसर। (3) भारत के उच्चतम स्कूल डी.पी.एस. में पढ़ने का अवसर। (4) विश्व के प्रसिद्ध विद्वानों से अध्ययन करने का अवसर। (5) चहुँमुखी प्रतिभा एवं विकास के साधन (6) डी.पी.एस. के माध्यम से विश्वस्तरीय खेल, प्रतिस्पर्धा एवं व्यक्तित्व विकास का अवसर। (7) खेल एवं संगीत शिक्षा की विशेष व्यवस्था। (8) मङ्गलायतन द्वारा देश-विदेश में तत्त्वज्ञान आराधना / प्रभावना करने का अवसर। (9) आगामी उच्चस्तरीय शिक्षा की पूर्व में ही विशेष कोचिंग की व्यवस्था। (10) आत्मसम्मान एवं जिनधर्म की शिक्षापूर्वक उच्च आजीविका का अवसर।

शीघ्र ही आप अपने बालकों का फार्म भरकर, तीर्थधाम मङ्गलायतन के पते पर कोरियर द्वारा 700 रुपये के ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

कोरियर भेजने का पता — भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, तीर्थधाम मङ्गलायतन
द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरा रोड, अलीगढ़ - 202001 (उ.प्र.)
मोबा : 9997996346, 9756633800, 9897069969, 9027768528

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

भगवान श्री महावीर निर्वाण दिवस की झलकियाँ

प्रकाशन तिथि - 14 दिसम्बर 2018 पोस्ट प्रेषण तिथि - 16-18 दिसम्बर 2018
Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

तीर्थधाम मङ्गलायतन का
वार्षिक महोत्सव 02-03 फरवरी 2019 को

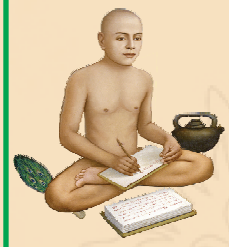

विश्व प्रसिद्ध रचना **तीर्थधाम मङ्गलायतन** का वार्षिक महोत्सव श्री आदिनाथ पंच कल्याणक विधान एवं महामस्तिकाभिषेक पूर्वक 02-03 फरवरी 2019 को संपन्न होगा। इस मंगल अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन एवं विद्वानों के स्वाध्याय का लाभ प्राप्त होगा। अधिक से अधिक साधर्मी पधारकर धर्मलाभ प्राप्त करें।

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com